प्रफुल्ल कोलख्यान

महाजुटान

लेबल: प्रफुल्ल कोलख्यान की कहानी

महाजुटान

नदियों पर बाँध। एक तरफ कैद में पड़ी विशाल जल राशि। दूसरी तरफ इस महाशोक में सिसकती मरियल-सी पतली जलधारा। इतनी पतली कि कुत्ता भी आसानी से फलांग जाये। नदी का पेट खाली। सदानीरा नदियों के पेट में रेत-ही-रेत। नदी तो प्राणधारा है। नदी है तो धरती में रस है। खेती है। अन्न है। कमला के दोनो ओर बाँध। नदी पर बाँध तो नेपाल ने बाँधा है। उधर पानी बढ़ जाने पर पानी को खोल देना पड़ता है। तब ऐसा लगता हे जैसे कैद से छूटकर नदी सामनेवाले पर पूरी ताकत से बदला लेने के लिए टूट पड़ती है। इस आक्रमण से रक्षा के लिए छहर काम आता है। आषाढ़-सावन-भादव, आसीन तक पानी रहता है। पानी रहता है तो नाव चलती है। बंगट नाव पर ही रहता है। उसका घर यही नाव है। उड़ानेवालों का क्या बे सर-पैर की उड़ाते रहते हैं और खूब उड़ाते हैं। एक बार तो अफवाह ही उड़ गई थी। अफवाह कि बंगट को जलपरेत का चपेट लग गया। असल बंगट तो मर गया है। यह बंगट का भूत है, भूत! अफवाह उड़ते-उड़ते बंगट तक भी पहुँची थी। सुनकर बंगट खूब हँसा था। हँसते-हँसते जैसे पागल हो गया था। और यह उसकी आखिरी हँसी थी। इसके बाद बंगट कभी हँसा नहीं। वह असामान्य तो हो ही गया था। लोगों का व्यवहार भी उसके प्रति असामान्य ही हो गया था। औरों की तो बात ही क्या। जो बात-बात में उसे जूता मारने का धौंस जमाया करते थे, चौधराना के वे चौधरी लोग भी उससे भय खने लगे। और बंगट भी अब गाँव के अंदर प्रवेश करना छोड़ चुका था। गाँव में उसके लिए ऐसा था ही क्या जो गाँव के अंदर जाये। जब तक नदी में पानी रहता, लोगों को इस पार उस पार करवाता। इस पार उस पार होनेवाले लोग पैसा के बदले कुछ-न-कुछ सामान भी जरूर चढ़ाते जाते। जिस दिन कुछ नहीं होता उस दिन एकाध मछली पकड़कर अपना गुजारा चला लेता बंगट लेकिन गाँव के अंदर कभी नहीं जाता। पानी उतर जाने पर नाव छोड़कर वह कहीं चला जाता। कहाँ? किसी को पता नहीं। पानी कम जाने पर भी उधर से गुजरनेवाले लोग, खासकर कुजड़नी और ग्वाले, अपना थोड़ा-सा सामान नाव पर जरूर चढ़ा देते। चढ़ावा से नाव पर गंदगी फैली रहती। लेकिन पानी चढ़ने पर अपने-आप

ही वापस आ जाता। कहाँ से? किसी को पता नहीं। नाव की सफाई करता। ठोक-ठाककर ठीक करता। इस बार नाव साफ-सुथरी भी थी और किसी ने उसकी मरम्मत भी कर डाली थी। एकदम फिट।

जिसकी जैसी श्रद्धा। जिसकी जितनी बड़ी मनोकामना उसकी उतनी बड़ी श्रद्धा। माँगनेवाले किससे नहीं माँगते हैं। एक आदमी बुखार से तड़प रहा था। यह अशुभ का संकेत था। इसके पहले एक बूढ़ा इसी तरह की बुखार से तड़पतड़पकर गाँव में मर गया था। ऐसे में लोचन चौधरी का जवान इकलौता बेटा किशोर भी बुखार की चपेट में साँझ रात आ गया। चिंता होनी ही थी। चार आदमी किशोर को खटिया पर लादे चले जा रहे थे। नदी के पेट के पार डॉक्टर के पास। झक्क चाँदनी रात थी। रात ग्यारह-बारह के आस-पास का समय। आगे-आगे खटोला और पीछे-पीछे लोचन चौधरी बेंत सम्हाले। मन-ही-मन हनुमान चालीसा का पाठ करते। एकदम पस्तहाल। नाव के पास से गुजरते हुए अचानक चौधरी को भान हुआ जैसे नाव में कुछ सुगबुगाहट हो रही है। अनायास चौधरी का हाथ जुड़ गया। मन-ही-मन प्रार्थना के स्वर फूटने लगा। मन्नत कर बैठे -

- हे बंगट बाबा अगर जो किशोर ठीक हो गया तो पूर्णिमा को आपके हजूर में जोड़ा लाल लंगोटा चढ़ाएँगे।

इस प्रार्थना का असर हुआ। लड़का पेट पार करते-न-करते बिल्कुल चंगा हो गया। माँग कर पानी पिया। डॉक्टर ने आला लगा कर देखा। कहा -

- सब ठीक है दवा की कोई जरूरत नहीं है। तब रात भर यहीं रह जाइये। अगर जो कोई जरूरत ही पड़ जाये तो उठा दीजियेगा।

डॉक्टर की कोई जरूरत नहीं पड़ी। पड़े भी कैसे खुद बंगट बाबा जिसके सहाय हैं उसे डॉक्टर-वैद की क्या जरूरत? बिना किसी दवा दारू के लड़का एकदम ठीक हो गया। लौटती में जिद बाँधकर खड़ा हो गया। कहने लगा -

- नहीं खटिया पर नहीं जाऊँगा...

साक्षात प्रमाण मिल गया था चौधरी को। चौधराइन को बताया तो चौधराइन ने भी कहा -

- हाँ-हाँ ... परतछ को परमान का, आँख से देखा तो फरमान का...

बात एक कान, दो कान, पूरे जहान! पूरबे में आग की तरह बात फैल गई। इस आग को पूरबे के लोग आरती की तरह तापने लगे। बात है ही ऐसी प्राइमरी स्कूल के काने गुरू जी ने अपनी कक्षा में छात्रों को बताया -

- जिसको नहीं मालूम उसको नहीं मालूम ...वे तो रोज पेट पार कर ही

अपने गाँव जाते हैं... अब रोज का मामला है... देर-सबेर तो हो ही जाती है... जो नहीं जानता है, सो नहीं जानता है... कोई उनको का बतायेगा भला बंगट बाबा का महिमा... तब बकी ई बात है जरूर कि ई सब बात का बेसी परचार ठीक नहीं है... लेकिन सब बाबा की ही महिमा है... उनकी मरजी के बिना थोड़े ही कुछ होता है...

उस दिन स्कूल का सारा दिन बाबा बंगट विमर्श में ही बीता।

अगली पूर्णिमा। जैसी बंगट बाबा की प्रेरणा। श्रद्धा और जतन के साथ लोचन चौधरी आगे-आगे। माथे पर लाल रंग की बड़ी-सी बिल्कुल नयी डलिया। डलिया में बड़ा-सा लाल लंगोटे का जोड़ा। जोड़े के ऊपर फूल-अक्षत-दूब चंदन। पीछे-पीछे चौधराइन। साथ में चारो गोतनी। नई साड़ी में शुद्ध घी से बनी ठकुए-पूरी की थाल सम्हाले। निहायत हल्के स्वर में भगवती का मंगल गीत गाती हुई चली जा रही थी। गीत की टेक बंगट बाबा का जयकारा था। साथ में गाँव के पिल्ले। कभी आगे तो कभी पीछे। पूरा वातावरण बंगट बाबा के पूण्यप्रताप का साक्षी बना हुआ था।

इस के बाद एक और घटना घटी जिसने पूरे गाँव को ही नहीं आस-पास के कई गाँवों को हिलाकर रख दिया। ....पूरा इलाका बंगट बाबा के सामने हाथ जोड़े थर-थर काँप रहा था। हुआ यह कि वाणी लोप! किसना गुम्म हो गया, एकदम गुम्मा। दो दिन के बाद हाथ-पैर पटकने लगा। एक ही बोली बोलता-

- हे बंगट बाबा माफ करना हम से बहुत बड़ा अपराध हुआ है तोहरे दरबार में ...

लेकिन बंगट बाबा ने माफ नहीं किया और कुछ दिन के बाद उसकी लाश मिली नाव के पास। लोग दाँतो तले अंगुली दबाये थे मल्लाह के जवान बेटे की लाश नाव के पास। समझदार जानते थे। यह कितनी गहरी बात थी। बात इतनी ही होती तो भी कोई बात थी। रहस्य यह कि इसके ठीक तेरहवें दिन बाल विधवा चंदा दाइ, ब्राह्मण कुल कन्या की भी लाश ठीक वहीं मिली। जहाँ किसुनवा की लाश मिली थी। चंदा दाइ जितनी भोली-भाली थी, उतनी ही सुंदर भी थी। उतनी ही सुशील भी। कोई कह नहीं सकता था कि उसके माथे पर दुख का इतना बड़ा पहाड़ था। फिर भी वह इतनी सहज और सरल बनी हुई थी। कभी किसी से झगड़ा नहीं बात-बतौवल तक नहीं। बहुत कम बोलती थी। दुख में बोलती थी। जैसे बसंत की हल्की मनोरम हवा के कोमल संस्पर्श से किसी टहनी से कोई फूल अचानक झड़ता है। बिना किसी आवाज के। उस चंदा दाइ का ऐसा अंत! किसने सोचा था।

अब क्या था। बंगट बाबा की उग्रता की कहानी पूरे इलाके में फैल गई। शांति के लिए पूरा इलाका चिंतित हो उठा। अपनी-अपनी जान की सब को पड़ी थी। एक डर सब के सिर पर। अवघट में मरा था किसुना। अवघट में मरी थी चंदा दाइ। जाने कब कौन-सा अवघटन घट जाये। इसी बीच नदी में पानी चढ़ने लगा। बंगट बाबा प्रकट हुए। लोगों की जान में जान आई। उन्हें देखने इलाके लोगों का ताँता लग गया। जनता की भीड़ उमरने लगी। इलाके के एम.एल.ए.भी आये। श्रद्धापूर्वक फूल-पान चढ़ा गये। चमत्कार यह कि राजधानी में सरकार खतरे में थी। भारी असंतोष से सत्ता समीकरण का गणित एकदम बदला गया था। एक-एक विधायक का हिसाब रखा जा रहा था। खुद मुख्यमंत्री ने उन्हें बुलाकर मंत्री पद की पेशकश की थी। पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ। जिस मुख्यमंत्री से मिलने के लिए वे परेशान रहते थे वे ही अब उन्हें मंत्री बना रहे हैं। सब बंगट बाबा की माया। शपथ ग्रहण के बाद मंत्री महोदय सीधे लौटे बंगट बाबा के दरबार में। जोड़ा लाल लंगोटा के साथ। तब से हर चैत चतुर्दशी को मेला शुरू होता है। इलाके का बहुत प्रतापी मेला जाति-पंथ निरपेक्ष मेला। बंगट बाबा का मेला। आस्था और मनोकामना का मेला। दुख-दर्द निवारण का मेला। जिसकी जैसी आस्था। आस्था सच्ची हो तो शुद्ध मन से माँगी गई कोई मनौती फोंक नहीं जाती है। ऐसा प्रताप है मेले का। चैत पूर्णिमा को विशेष अनुष्ठान होता है। उस रात बारह बजे, रेत से दस हाथ ऊपर-ऊपर बंगट बाबा की काया डोलती रहती है। सबसे पहले रामलोचन चौधरी को दर्शन हुआ था। चारो तरफ जय-जयकार गूँज उठा था। जैसा कि शक्ति के प्रकट होने पर होता है। कुछ और प्रतापी लोगों को बंगट बाबा के देवरूप का दर्शन हुआ है। अब सब के पास न तो वह आँख है और न वह बुद्धि कि साक्षात देवरूप को देख ले। पुण्यात्माओं की बात अलग है। कहते हैं कि खूब ध्यान लगाने और मन में किसी तरह का पाप न होने पर कुछ गृहस्थ लोगों को भी पुण्य दर्शन हुआ है। गृहस्थों के लिए यह दुर्लभ ही है। घर-परिवार नाना जंजाला। इसमें पाप रहित रहना इतना आसान है! पूर्व जनम की जिसकी जैसी कमाई। उसके बाद सात दिन तक मेला धूम-धाम से चलता रहता है। बंगट बाबा का मेला। बंगट मेला। अब बंगट मेला में तीन मंदिर हैं। एक तरफ चंदा दाइ। दूसरी ओर किसुन देवा। बीचो-बीच बंगट बाबा का बड़ा मंदिर। मंत्री जी की कृपा से बने इन मंदिरों को पाकर आस-पास का जनजीवन धार्मिक उछाह से लदबद रहा करता है। मेला में सभी जाति-धर्म के लोग अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार अपना चढ़ौवा चढ़ाते हैं। कोई फेंट-फाट नहीं बिल्कुल सुच्चा भक्ति। रात भर लोग खीर-पूरी खाते हैं। नाचते-गाते हैं। फिल्मी तर्ज पर। भजन-कीर्तन करते रहते हैं। पूरी इजोरिया गीत-नाद से गभिनाई रहती है। ऐसा बहुत कुछ होता है, जो औरत-मर्द, बाल-वृद्ध माने दस आदमी के एक जगह जमा होने पर होता है।

क्लास आठ की पढ़ाई भी क्या पढ़ाई है। इसे तो अनपढ़ ही मानना चाहिए। चाहिए क्या होते

ही अनपढ़ हैं। सिर्फ सरकारी आंकड़ों के काम आते हैं। शहर आने पर चीजों और मान्यताओं में फर्क आ ही जाता है। वर्गीकरण और विभाजन के नये-नये आधार बनते हैं। वहाँ हर छोटी-मोटी चीज की अपनी ही उपयोगिता हुआ करती है। आठवीं क्लास पास जमील को कभी महसूस ही नहीं हुआ था कि उसका आठवीं क्लास का ज्ञान सचमुच कभी उसके किसी काम भी आ सकता है। गाँव में कभी इस ज्ञान की जरूरत ही नहीं पड़ी। उसे याद भी कहाँ कि वह पढ़ा-लिखा है। शहर आते ही उसे दुकानों के साइनबोर्ड और मकानों के नंबर पढ़ना पड़ा। अब आँख मूँद कर किसी पर कैसे विश्वास कर लिया जाये। टो-टा कर पढ़ते, हकला-हकला कर पूछते-पाछते, तुड़ी-मुड़ी पर्ची से पता मिलाते-मिलाते और लटपटाकर चलते-चलते साढ़े चार घंटे की कठिन कोशिश के बाद ठिकाने पर पहुँचने में कामयाब हुआ। ठिकाना क्या था प्लास्टिक और कच्चे सामानों से बनी झुग्गी झोपड़ियों का एक बहुत बड़ा मलवा सरीखा था। हाँ पहचान की बात यह जरूर थी कि सामने एक बहुत बड़ा चमकीला बोर्ड लगा हुआ था। लाल रंग की जमीन पर हरे रंग की स्याही से लिखा हुआ था प्रगतिशील झुग्गी कालोनी। राम प्रसाद जी ने कहा तो यही था कि प्रगतिशील झुग्गी कालोनी में किसी साले से पूछ लेना मेरा नाम, अपने बाप की मिट्टी छोड़कर मेरे पास लेता आयेगा। थोड़ा-सा परिचय देने और जनपद का नाम बताने पर लोग दायें-बायें तो बता ही दे रहे थे। निराश होने जैसी कोई बात नहीं थी। चलते-चलते या भटकते-भटकते वह थक जरूर गया। गलियों में मेहरारू बाल छितराये हुए एक दूसरे के माथे से जूँ बीन रही थी। बच्चे धक्कम-धुक्का करते हुए इधर-उधर भागमभाग कर रहे थे। अनजान शहर में वैसे भी मेहरारुओं से जहाँ तक हो सके आदमी को दूर ही रहना चाहिए। बच्चों से क्या पूछा जाये। तभी गली के अगले मुहाने पर खाँसने की सी आवाज उभरी। जमील को लगा हाँ वहाँ से कुछ पता अवश्य लग सकता है। उसने बड़े अदब और होशियारी से पूछा -

- काका क्या राम प्रसाद जी अइजबे रहते हैं ... राम प्रसाद जी....?

बूढ़े ने पहले आवाज पहचानने की कोशिश की। नाकाम रहने पर चेहरा चिन्हने की कोशिश। मगर फिर नाकाम। अंतत: ध्यान पोशाक पर जा कर ठहरा। आदमी उधर का ही है। देस का ही आदमी है, सीधे देश से ही चला आ रहा है। जरूर कुछ देस का भी हाल लेकर आया ही होगा। कुछ भला बुरा घट जाने से अफवाह पर चढ़कर खबरें तो आ ही जाती हैं। अखबार से नहीं लोगों की आवाजाही से। कल वहाँ कोई बात हुई तो आज यहाँ खबर। कुछ यहाँ हुआ तो वहाँ खबर। अखबार को कहाँ फुरसत। इतनी बड़ी-बड़ी बातें रोज-रोज होते रहती है। ऊपर से नेताओं की हगनी-पदनी। अखबार बेचारा किस-किस को सँभाले। भतार से निजात नहीं देवर माँगे चुम्मा। काका कहीं ओर खोये थे। प्रश्नवाचक मुद्रा में खुला था जमील का मुँह -

- काका क्या राम प्रसाद जी हिंये रहते हैं...!

इस बार जमील की आवाज में हकलान काफी बढ़ गयी थी। काका ने पलटकर पूछा -

- कवना रमप्रसदवा हो.... इहाँ तीन-तीन राम प्रसाद रहते हैं बाबू... तुम को कौन राम प्रसाद चाहिए...।

अब भला इस सवाल का क्या जवाब दे जमील। राम प्रसाद माने राम प्रसाद। कितने दायें-बायें के बाद तो यहाँ तक पहुँचा है। यहाँ मिला यह सवाल। जमील की तो जैसे जवान ही तालु से चिपक गयी । जमील को चुप देख काका ने फिर पूछा -

- कवना राम प्रसाद? यहाँ तीन-तीन राम प्रसाद रहते हैं। एक लखनपुरा के। एक नाजीरगंज के। एक बेलदारी के। आप किस राम प्रसाद को खोजते हैं बाबू...?

नाजीरगंज का नाम सुनते ही जैसे जमील के प्राण वापस आ गये हों -

- हाँ काका नाजीरगंज के राम प्रसाद...नटे-नटे ..करिये-करिये हैं ...

काका ने हामी भरी-

- हाँ यहीं रहते हैं... अभी काम पर गये हैं... लौटने का कोई ठीक नहीं तब छ-सात बजे तक आ जाते हैं... बकसवा को तब तलक खटियवा के नीचे रखकर बैठ जाइये... जब आयेंगे तब आयेंगे।

जमील का मन उसी तरह शांत हुआ जैसे अषाढ़ में बीज डालने के पहले, फुहार पड़ जाने पर हाल के बारे में सोचते हुए किसान का मन शांत होता है। काका ने टोह लेते हुए पूछा -

- बाबू क्या आप राम प्रसाद जी के गाँवे के हैं।

जमील ने साफ किया -

- नहीं काका... हम लछिमपुरा के हैं... पिछले साल हमरी बहन ब्याह के गई है उनके गाँवे।

बात की तह तक पहुँचने और बात को आगे बढ़ाने की गरज से बूढ़े ने पूछा :

- उनके गातियारो में बियाही है का...?

सवाल का असली मकसद जमील की समझ में आया -

- नहीं काका ....हम मुसलिम हैं...जमील अंसारी।

बूढ़ा एक दम से चुपा गया। जैसे परिचय बनते-बनते बिगड़ गया हो। बात खुलते-खुलते किसी अंधी गली में पहुँच गई हो। जैसे दोनों के बीच में कश्मीर हो। पुल करते समय अचानक बीच की पटरियाँ धराधर गायब हो गई हों। जमील खटिया पर बैठा हुआ अवश्य था लेकिन किसी अज्ञात असुविधा के बोध से जैसे दबा हुआ। बूढ़ा बैठने के लिए कहने पर पछता रहा था। सच है बिना बिचारे जो करे सो पाछे पछताए। अब कैसे कहे कि राम प्रसाद यहाँ नहीं रहते हैं। बुझी

हुई आवाज में बूढ़े काका ने कहा -

- हमार नाम रामखेलावन पांड़े है...राम प्रसाद आठ बजे के पहले नहीं आनेवाले...

कहा कुछ इस तरह कि इससे अधिक इस समय और कुछ कहा नहीं जा सकता हो। जो कहना था सो कह दिया। कहा क्या, फैसला ही सुनाया। जमील परेशान हो गया -

-पांय लागी बाबा... राम प्रसाद तो आठ बजे आयेंगे... हम तब तक चाह-वाह पी लेते हैं... बाहर जाकर...

जमील उठ खड़ा हुआ। बाबा यानी पांड़ेजी को लड़का भला लगा। समझदार है। उठ गया। अभी तो नया है। डर गया होगा। चार दिन रह ले फिर क्या-क्या गुल खिलायेगा कौन जाने। अब उनका गुस्सा रामप्रसाद की ओर लपका। साले लोग देस जाते हैं तो ऐसी हवा बना के आते हैं जैसे यहाँ उनके बाप का राज चलता है। गरीब को ताड़ी-वाड़ी के चक्कर में हाँक दिया होगा कि जब चाहो चले आना कोई-न-कोई सूरत निकल ही आयेगी काम-धंधे की। फिलहाल काकाजी तो इतने पर परम संतुष्ट थे कि लौंडे ने इज्जत रख ली है -

- हाँ-हाँ ठीके है चाह वाह पी लो बाबू अभी समय बीत जाता है... सामने दुकान है... पैसा वैसा... न होए तो रमपरसदवा का नाम धरना ...

पहले इस शहर में ऐसी बात नहीं थी। शायद आगे भी नहीं रहे। अभी कुछ ही दिन हुए थे दंगा-फसाद को शांत हुए। ऐसा नहीं कि यहाँ हिंदु-मुस्लिम भाई-भाई हों। होंगे भी कैसे। अब तो भाई-भाई, ही भाई-भाई नहीं रहे। हिंदु-मुस्लिम क्या खाक भाई-भाई होंगे! तब यह जरूर है कि एक कामचलाऊ समझदारी इनके बीच हमेशा रहती आई है। कोई चाहे तो इस समझदारी का अपने हिसाब से अर्थ लगा ले। जब दंगा-फसाद ने इस देश की समझदारी में भी खलल पैदा कर दिया तब शहरों का कहना ही क्या! और शहर की ही बात क्या करें इस बार तो यह आग गाँव तक में फैल गई है। देश की सोच का आधार ही भरभरा कर ढह गया। देश विभाजन के बाद यह देश हमेशा ही कच्ची भीत की तरह हवा बसात से त्राहि-त्राहि करता रहा है। वैसे भी शहर हमेशा संतुलन पर टिका रहता है। हवा का कौन सा झोंका कब किधर से आये और सब कुछ को तहस-नहस कर चला जाये कोई नहीं जानता। महानगर माने महासागर। गाँवों और शहरों का समंदर। कई-कई गाँवों, कई-कई शहरों का गुच्छा। सब जैसे एक बहुत विशाल पक्षी के डैने के नीचे धीरे-धीरे साँस लेते हों। जमील पहली बार आया है। घर से चलते समय उसे जरा भी नहीं एहसास हुआ था कि किसी अपरिचित या पराई जगह की ओर जा रहा है। जाने को वह दिल्ली-पंजाब भी जा सकता था। लेकिन इस शहर के बारे में इतनी कहानियाँ उसने सुन रखी थी, इतने

गीतों में सुन चुका था कि इस शहर के चप्पे-चप्पे की संवेदना से जुड़ गया था। इससे सपनों में वर्षों मिलता रहा है! इस शहर की यही खासियत है। जो कभी इधर झाँकने भी नहीं आया उन पूरबियों को भी, यह शहर अधिक अपना और परीचित लगता है। यहाँ जितना दिन काट लो उतना ही अपरिचय भी बढ़ता चलता है। यह अद्‌भुत बात है। लोग-बाग अपरिचय से परिचय की ओर बढ़ते हैं। लेकिन ये पूरबिये परिचय से अपरिचय की ओर। पता नहीं यह पूरबियों की अपनी उलटी खोपड़ी का कमाल है या इस शहर से उनके वेमातृय संबंध का फल। हो जो भी मगर है ऐसा ही।

जमील चिहुँका। अरे ये तो रामप्रसाद भाई हैं। एकदम पास ही। क्या देखा नहीं? उसे एक झटका लगा। गाँव में तो लोग एक दूसरे का कोस भर दूर से ही पहचान लेते हैं। मगर यहाँ शायद संभव ही नहीं है। भीड़ में, लपक कर उसने धीरे से रामप्रसाद की बाँह पकड़ी। रामप्रसाद घूमकर देखा तो सही मगर उसकी आँखों में परिचय का भाव नहीं पाकर जमील सहम गया। आखिर परिचय भी तो कोई बहुत पुराना नहीं है। अगर सचमुच ही नहीं पहचान पाये तो क्या होगा -

- आपने पहचाना नहीं का! ... अरे हम जमील हैं, जमील ... आप रामप्रसाद भाई हैं न! आपके गाँव में मेरी बहिन ब्याही है ....

पिछली बार वह गाँव गया था चार साल के बाद। हवा बहुत बदल गई थी गाँव में भी। लेकिन फारूक अब भी उसके दोस्त जैसा ही था। और दोस्त क्या खाक होगा। चार -चार साल पर तो गाँव आता है। बाप-महतारी तो अनचिन्हार हो जाते हैं। महीना-दो-महीना पर हजार-पाँच सौ भेज देने से ही तो काम नहीं बनता है। फिर भी गाँव तो गाँव है। एक दिन तड़ीखाने में फारूक से मुलाकात हुई। यह छोकरा भी तभी मिला था। सबने जमकर ताड़ी धकेला था। यह फरूकवा का साला है, जानकर उसे अच्छा लगा था। बीच का समय जैसे ताड़ी से पट गया था। सारा पैसा तेतरी ने रामप्राद के नाम पर ही चढ़ाया था। बड़ी चालबाज औरत है। अपनी जवानी के दिनों में एकदम कटारी थी। काली नहीं, चमकदार। काली चमक और सुग्गा ठोर। हँसती थी दाँतों से उजास छिटकती थी। फाटल जामुन की तरह तो अभी भी लगती है। उसके जमाने में तो कई छोकड़े उसीका आँचल पकड़ जवानी के कालेज में दाखिल हुए थे। जानती है किस से कितना और कैसे वसूला जा सकता है। यह तो दुनिया जानती है कि वह शहर कमाकर आया है। उससे अच्छा मालदार और कौन हो सकता है!

फरूकवा और जमील रामप्रसाद के गप्प में जमील भी काफी देर तक साथ था। वे देर तक दुनिया-जहान बतियाते रहे थे। बात घूम-फिर कर गाँव में घट रही घटनाओं पर आ जाती थी। जमील ने बताया कि कैसे उसके रिश्तेदार नाजीरगंज में शकीला की शादी करने से कतरा रहे थे। नाजीरगंज हिंदुओं का गाँव है। जिसका नाम बदलकर नरपतनगर करने के लिए कोहराम

मचाया जा रहा है। उसके अब्बा कहते थे जो वतन को जिब्ह करते वखत नहीं हुआ सो अब हो रहा है। नाजीरगंज लोगों की जुबान पर चढ़ा हुआ नाम है। इतनी आसानी से कैसे उतर सकता है। नहीं तो आज लोग नाजीरगंज को नरपतनगर के नाम से जानते। कनफुकवा बाबा तो नरपतनगर ही कहते हैं। सामनेवाला मुँह बा दे तो फिर खखासकर नाजीरगंज कहते हैं। फिर आखिरकार कैसे शादी तय हुई। विस्तार से, बहुत विस्तार से... बहुत विस्तार से बताया था जमील ने। वह सब याद नहीं रामप्रसाद को। याद सिर्फ इतना है कि ताड़ी की तड़क में उसे जमील में शकीला का चेहरा ही चस्पा लगता था। जैसे वही अपनी बिती बता रही हो। क्या चेहरा था, जैसे इजोरिया की बच्ची हो। उसी दरमियान जमील ने कहा था वह भी शहर कमाना चाहता है। बड़ी लापरवाही से जमील ने हामी भरी कि, हाँ-हाँ आ जाना। कुछ-न-कुछ जुगाड़ तो हो ही जायेगा। आदमी मिहनत करनेवाला होना चाहिए बस। काम तो हर किसी को मिल ही जाता है। इस बीच तरह-तरह की आँधी आई। आँधी, जिस में सब कुछ उड़-उजड़ जाता है। भीतर से। ऊपर-ऊपर तो सब ठीक ही दीखता है। अब उसे ही तब क्या पता था कि एकदम से आइये जायेगा। वह भी एकदम ऐसे कठिन वक्त में। ठीक भूकंप के झटके के साथ आये पाहुन की तरह। रामप्रसाद को याद तो सबकुछ आ गया। फिर भी एक मन तो किया कह दे वह उसे नहीं जानता। ऐसा कह न सका -

- वो हाँ... हाँ क्या नाम बताया जमील हाँ-हाँ याद आया... इधर कहाँ भैया...?

रामप्रसाद मन-ही-मन सोच भी रहा था। नहीं होगा तो आज होटल में ही खा लेगा। कल से देखा जाये कैसे गोड़ी बैठती है। अब आया है तो कम-से-कम दो-चार दिन तो रहेगा ही। फिर जैसा होगा देखा जायेगा। उसी के आसरे पर तो इतना दूर मुलुक से चला आ रहा है बेचारा। और सब तो मानिये जायेगा। ऊ बदमाश फूल पांड़े। वही साला आग उगलता रहता है। उसका भी क्या कसूर। बाप तो उसका टाँग तुड़ा के घर बैठिये न गया है। अब ई कौन बतावे उसको कि बाप तो तुम्हारा बुढ़ापे में भी कुरुक्षेत्र जीतने गया था। उसके कहने पर लोग चले होते तो कितनों की जान ही चली जाती। वह है कि टाँग को लेकर झख रहा है। साथ ही रहना है। बहस करने से ई सब बात और विस्तार ले लेती है। अपनों के बीच में होनेवाली बात की बात दूसरी है। दूसरा कोई क्यों बर्दाश्त करेगा। करे भी तो कब तक..! आखिर आदमिये है। कभी कुछ मुँह से निकलिये गया। निकलेगा क्यों नहीं... इसलिए आज खा तो होटले में लेगा। सोना तो लेक में ही है ही। इतना सोचते-सोचते रामप्रसाद थक-सा गया था। लेकिन सोयेगा जगह बदलकर। हलांकि अब वैसा कोई खतरा नहीं है। परंतु क्या कहा गया है न कि अग्रचेती सदा सुखी। पहले जमील को यहाँ के हाल-हवाल से वाकिफ करवा देगा। फिर वह जैसा सोचे। मन का ऊथल-पुथल वैसे भी नहीं छुपता है। बड़े ज्ञानियों की बात अलग है। वे तो मुँह में राम बगल में छुरी दोनों को ऐसा साधते हैं कि देखनेवाला सूंघ भी न पाये कि पान खिलाकर वे उसके साथ क्या करनेवाले

हैं। ठीक भी है। इतनी चालाकी न हो तो आज के जमाने में कोई बड़ा बने ही कैसे। रामप्रसाद तो बेचारा रामप्रसाद है। ठीक है कि शहर सिखावे कोतवाली। रामप्रसाद तो औने शहर को बस पौने ही सीख पाया था। रामप्रसाद के मन को पढ़कर जमील सकते में था। कुछ सहमा हुआ-सा। मन में उठे तूफान में निश्चय की डोरी मिलते ही रामप्रसाद ने जमील से पूछा -

- कब आये... भैय्या... सब ठीक-ठाक तो है गाँवे...?

रामप्रसाद की बात सुनकर जमील को लगा जैसे जंगल में भटका राही अचानक राह पा गया हो -

- हाँ भाई जी वैसे तो सब ठीके-ठाक है... अब गाँव में लेकिन हवा-पानी बदल रही है...अब आप से क्या छिपाना... आप जैसे लोग-बाग अब गाँव में भी कम ही रह गये हैं...

सुनकर रामप्रसाद को अच्छा लगा -

- और तुम्हारा बक्सा-बुक्सी... ऊ कहाँ है ..?

हाथ के इशारे से रामप्रसाद को जमील ने बताया -

- बाबा के खटिया के नीचे ।

अब तक दोनो गली के भीतर दाखिल होकर झोपड़ी के पास पहुँच चुके थे। राम प्रसाद झोपड़ी का ताला खेलने लगा और तब तक जमील अपना बक्सा उठाकर कमरे में ले आया। रामप्रसाद ने बत्ती जलाकर कपड़ा खोला कमर में लुंगी और कंधे पर गमछा रखकर बाहर निकल आया। थोड़ा हवा-पानी तो ले ले। निकलते-निकलते जमील को बोलता गया -

- कपड़ा बदलकर लुंगी गमछा निकाल लो भैया अभी चलकर नहाते हैं।

रामप्रसाद अभी घर के बाहर निकला ही था कि बाबा ने हाँक लगाई -

- आ गईल हो रमप्रसाद ...तहरा गाँवे से कोई आया है...देखा हुआ ...

रामप्रसाद ने पूरी हिम्मत जुटाते हुए कहा -

हाँ बाबा जमील आये हैं... मेरे बहुत अच्छे दोस्त हैं... हमरे गाँव में इनकी बहिन बियाही है...

जमील ने ऐसे कहा जैसे कुछ कहा न हो, बल्कि अपना फैसला सुनाया हो ।

ऐसे में अब जमील के सामने रास्ता ही क्या था। वह तो यहाँ चला ही आया था रामप्रसादजी के भरोसे। ठीक भी रामप्रसादजी की मुसीबत, उसकी मुसीबत। यह तो उसको समझना ही होगा।

देश-दुनिया की जो हालत है वह तो उसको पहले से मालूम ही है। सही बात है। आखिर इनका भी तो समाज है। कुछ इज्जत है। सुकून के लिए यह क्या कम है कि उन्होंने उसे सीधे और समय रहते सचेत कर दिया, बिना जुबान हिलाये। वह इसी हिसाब से रहेगा। हवा चलती है तो कहाँ-कहाँ नहीं पहुँचती है। यह तो अपने देश की ही बात है। उसमें भी समझो तो एक तरह से अपने गाँव-जवार की ही बात है। गाँव-जवार बनता किससे है। आदमिये से न! इस अनजान शहर में कुछ भी करने से पहले पच्चीस बार सोच लेना उसके लिए भी लाजिमी ही है! इस बार गाँव में भी जो हुआ भोला चचा बता रहे थे पहले कभी नहीं हुआ। जब आजादी का बँटवारा हुआ, तब भी नहीं। जब हिंदुस्तान-पाकिस्तान में जंग हुआ तब भी नहीं। अब तो मरने-मारने पर जैसे लोग हमेशा उतारू ही रहते हैं। अब जो हो रहा है सो तो सब के सामने ही है। एक नेताजी आये थे। नाम नहीं मालूम। जमील ने कभी देखा भी नहीं था। सुना भी नहीं था। इतना जरूर जानता था कि लोग उनको भाईजी कहकर बुलाते थे। भाईजी की बातें उनके जाने के बाद लोग-बाग दुहराते रहते थे। भाई जी की बातें हवा में लहराती रहती थी। भाई जी की बातें हवा में नाना रूप धरती थी। वे बातें अजीब होती थी। जमील की समझ में तो कुछ आया नहीं। उसकी खोपड़ी ही छोटी है। वह क्या करे। तब इतना जरूर है कि गाँव में नफरत और ना-यकीनी का माहौल जरूर बन गया। सभी एक-दूसरे से डरने लगे। एकदम तमीज से पेश आने लगे। जाने किस बात से आग भड़क जाये।

रामप्रसाद ने टोह लेने की गरज से आवाज लगाई -

- जमील...सो गया का

जमील ने भी रामप्रसाद के मन को ताड़ना चाहा -

- नहीं भैय्या... नहीं नींद कहाँ आती है... सोचते हैं कि तुमको भी झमेले में डाल दिया

अपने मन के चोर को छिपाते हुए जमील ने कहा।

- नहीं ऊ बात नहीं है जमील... झमेले में तो हम सभी हैं... पूरा मुलुक ही झमेले में है ई झमेला नहीं तो ऊ झमेला... फिर तुम तो फारूक का साला है तो हमारा भी तो रिश्तेदार ही न हुआ एक तरह से....

जमील को यह बात लग गई -

- एक बात बोलें.... देखिये फारूक मियाँ हैं तो हमरे दुल्हा भैय्या... कहना नहीं चाहिए... मगर आपको बता रहे हैं... हैं ऊ भी पक्का कमुनले...

जमील ने नजदीकी होते हुए रहस्य को खोलने की मुद्रा में बोला।

-ए... जमील क्या बकता है उलटा-पुलटा होश में तो है तू...!

रामप्रसाद ने समय रहते उसको सम्हालने की कोशिश की... जाने कोई सुन-सुना ले तो साला बात का बतंगर बना दे।

- हाँ-हाँ पिछली बार उनकी बात-चीत से ऐसा ही लग रहा था... आप के दोस्त हैं बुरा मत मानिये... मैं तो कहता हूँ जमील समझकर जो सलूक करना हो शौक से कीजिये... बार-बार दुल्हा मियाँ को बीच में मत लाइये...

जमील एकदम बेबाकी से कह गया।

रामप्रसाद ने एक बार फिर जमील को सम्हालने की कोशिश की। अभी इसको मालूम ही क्या है। परदेश कहते किसको हैं -

- अरे वाह हमारा तुम्हारा परिचय ही क्या है...

जमील भी कहाँ हार माननेवाला था -

...परिचय... तो फारूके मियाँ से मेरा परिचय क्या है... और परिचय तो आदमी का व्यौहार है... व्यौहार से बढ़कर और परिचय क्या हो सकता है...

जमील के प्रतिवाद का अपना तर्क था। तर्क में दम था -

...बात ऊ नहीं है जमील... आदमी की सौ मजबूरी होती है... कब कौन किस मजबूरी में फँसकर क्या हो जाता है कौन जाने... अब हम्ही को देखो... ई सब बात जो अभी तुमको बताये कोई हम को भी कमुनले समझ सकता है... है कि नहीं... मगर तुम तो जानते हो कि ऊ बात है नहीं...

जमील के सीधे और लगभग हमलावर तर्क के सामने घुटने टेकते हुए रामप्रसाद ने जीवन की मजबूरियों और परिस्थितियों का सहारा लिया। जमील थोड़ा संयत हुआ। रामप्रसाद के मन को सहलाने की कोशिश की -

- भैय्या आपकी बात सही है ...मगर आदमी को कहीं-न-कहीं तो अड़ना ही होगा... नहीं तो इन लोगों का हौसला और बुलंद होता है...

रामप्रसाद ने बात को यहीं विराम देना चाहा...

...ए भाई जमील सो जाओ...कल हम को डिप्टी भी जाना है... नींद पूरी नहीं होने से आँख पर लाली चढ़ जाती है और बाबू समझता है कि आदमी नशेड़ी है... सो जाओ... पूरा मुलुक सो रहा है...

वैसे इतना तो वह भी मानता है कि जमील की बात में ईमान है और मजबूरियों से सच का आईना नहीं बदल जाता है। जमील में यही एक ऐब है। बोलने के पहले तौलता नहीं है। सामनेवाला क्या सोचेगा इसकी कोई फिक्र ही नहीं करता है। असल में जमील को तो मालूम भी नहीं कि कमुनल क्या होता है। कुछ दिन से हवा में ही यह शब्द कुछ इस तरह से घुलमिल गया है कि उसकी जुबान पर चढ़ गया। इसका अर्थ उसने अपने मन से गढ़ लिया है - जो साँच को झूठ और झूठ को साँच बताये... लोगों का हक बिगाड़ कर अपना काम बना ले वही तो कमुनल है... और क्या? कमुनल को कोई दुम थोड़े न होती है। जमील ने बात को मोड़ते हुए कहा -

- बंगट मेला के महाजुटान के बारे में कुछ जानते हैं... भैय्या ...

रामप्रसाद ने इस बारे में कुछ बातें सुनी तो थी, मगर वह कुछ समझ नहीं पाया था महाजुटान का रहस्य। उसने उत्सुकता दिखलाई तो जमील ने सारी कहानी सुना दी। अचरज से भरकर रामप्रसाद ने पूछा-

- किसना और चंदा दाइ के बारे में तो सभी जानते थे। ये देवता कैसे हो गये! और वह बंगटा! बंगट बाबा कैसे हो गया! लोग इतने अंधे कैसे हो सकते हैं! कैसे! जिंदा रहते भर में तो उन दोनों को सभी कलंकित करते थे!

जमील ने धीरे से कहा -

-एक मुर्दा समय में मरने के बाद ही इज्जत नसीब होती है। अपने गाँव में आजकल मुर्दे के उस टीले पर महाजुटान होती है भैय्या। सभी धर्म के, सभी जाति के लोग उस मुर्दे के टीले पर चढ़ने के लिए बेताव हैं। सभी। उस टीले पर जो जितनी ऊँचाई से आवाज लगाता है वह धरती का भगवान बनने के उतने ही करीब पहुँचता है। मुर्दे के उस टीले को खेत में बदलने को हमारे गाँव में कोई तैयार नहीं है। अनाज कहाँ से पैदा होगा! भगवान पैदा होंगे! पीर-मजार पैदा होंगे! जब तक मुर्दों का यह टीला है तब तक लोग भगवान बनने से... पीर बनने से बाज नहीं आएँगे! मुश्किल यह है कि लोग भूखे पेट कब तक भगवान को भजेंगे! कब तक!

फिर दोनों करवट बदलकर सो गये। मुर्दों के उस टीले पर चढ़ने का अभ्यास सारी रात सपने में करते रहे --- और ऊँचे, और ऊँचे... मुर्दों के टीले पर चढ़ते रहे। बार-बार मुर्दों के उस टीले से

लुढ़कते रहे। सुबह की अजान के साथ ही जमील की आँख खुली। पहला ख्याल यही आया कि एकाध फर्लांग पर मस्जिद है। वह वहीं चला जाये। अल्ला मियाँ की दुआ से कोई दूसरा ही सही रास्ता निकल जाये शायद। यह ख्याल उसे अच्छा नहीं लगा। वह बगल में लेटे राम प्रसाद को अपलक देखता रहा .... !

इस सामग्री के किसी भी रूप में उपयोग के लिए लेखक की सहमति अपेक्षित है।
सादर, प्रफुल्ल कोलख्यान